JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"डॉ. आंबेडकर का सामाजिक मानववाद एवं बौद्ध धर्म"

संदीप कुमार
शोधार्थी

डॉ॰ शिवपूजन सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर

मुख्य शब्द – बौद्ध धर्म, मानववाद, डॉ॰ आंबेडकर

प्रस्तावना

डॉ॰ भीम राव आंबेडकर ने अपने चिन्तन में उस मानव को केन्द्र बिन्दु बनाया जो सदियों से समाज की कुरीतियों, पीड़ाओं, कुंठाओं, रूढ़ियों, परम्पराओं के ढकोसलों से शोषित था। डॉ॰ भीम राव आंबेडकर ने ऐसे मानव की सामाजिक आजादी के लिए प्रयत्न किये, समाज में संघर्ष किया और उसको सामाजिक मानव का स्तर प्रदान कराया, जिससे उनके चिन्तन में सामाजिक–मानववाद की झलक दिखाई दी। वैसे सामान्य रूप से सभी मानववादी सामाजिक ही होते है, क्योंकि मानववादी चिन्तन में सामाजिक समस्याओं पर विचार किया जाता है एवं समाज की उन समस्याओं का निराकरण करने के उपाय सुझाये जाते है तथा एक आदर्श समाज की कल्पना की जाती है जो समाज का एक आदर्श ढाँचा मात्र होता है, जिसका व्यावहारिक रूप बहुत कम दिखाई देता है, जबकि डॉ॰ भीम राव आंबेडकर ने समाज की तथाकथित समस्याओं को स्वयं अपने ऊपर झेला, उनसे पीड़ित रहे, शोषण, अत्याचार, तिरस्कार, घृणा, भेदभाव, छुआछूत आदि समस्याओं से मृत्यु–पर्यन्त शिकार होते रहे, यही कारण है कि उन्होंने अपने चिन्तन को नीचे से ऊपर की ओर विकसित किया, इसलिए उनके चिन्तन को मानववाद कहा जाता है। उनका मानववाद अन्य विचारकों से भिन्न है, वह भारतीय संस्कृति से प्रभावित है, उसमें भारतीय संस्कृति की नैतिकता का पक्ष कूट–कूट कर भरा पड़ा है। उनका मानववाद बुद्ध की मौजिक शिक्षाओं पर आधारित है। बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय उनके मानववादी चिन्तन के केन्द्र बिन्दु है। डॉ॰ भीम राव आंबेडकर के मानववाद के प्रमुख तीन आधार (1) स्वतन्त्रता (2) समता एवं (3) भ्रातृत्व है। मानव–समाज की दृढ़ता एवं एकता के लिए ये मूल्य आवश्यक है।

- **स्वतन्त्रता –** स्वतन्त्रता आन्तरिक एवं बाहय दोनों ही प्रकार की होती है। आन्तरिक स्वतन्त्रता अधिकांशतः मनुष्य की भावनाओं पर आधारित होती है। प्रत्येक मनुष्य संयम से काम ले, तो वह आन्तरिक स्वतन्त्रता स्वयं निरपेक्ष नहीं है। वह सापेक्षिक है, अर्थात् आन्तरिक स्वतन्त्रता बाहय परिस्थितियों पर भी निर्भर है, समाज मे पाये जाने वाले आचार–विचार उसके सहायक अथवा विरोधी सिद्ध हो सकते है। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को विभिन्न प्रकार की बाहय स्वतन्त्रताएं प्राप्त होनी चाहिए। बाहय स्वतन्त्रता से अर्थ है कि मनुष्यों को एक दूसरे के हितों का ध्यान रखना चाहिए। सामाजिक सम्बन्धों से यह बात सत्य भी है, क्योंकि हर एक व्यक्ति किसी–न–किसी के ऊपर निर्भर है। समाज के सभी सदस्यों में आपसी सहयोग होना चाहिए। सम्पूर्ण समाज व्यक्तियों पर उतना ही निर्भर है, जितना कि एक व्यक्ति समाज पर। डॉ॰ डी॰ आर॰ जाटव के अनुसार, ''बाहय स्वतन्त्रता व्यक्ति की वह भावना है, जो सामाजिक क्षेत्र में इस तरह कार्य करती है कि एक तरफ उसकी स्वतन्त्रता एक दूसरे लोगों की स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु कुछ नियन्त्रण हो जाते है और दूसरी ओर उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु अन्य लोगों की स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है। मानव सहयोग सामाजिक स्वतन्त्रता की मांग करता है। समाजिक स्वतन्त्रता में मुख्यतः दो आती है–1. एक ही समुदाय में रहने वालों की स्वतन्त्रता तथा 2. अन्य समुदाय से एक समुदाय की स्वतन्त्रता। किसी समुदाय में रहने वाले व्यक्ति के ऊपर अनेक दबाव पड़ते है, तो उसे स्वतन्त्रता नहीं कहा जा सकता क्योंकि उससे वह अपने उद्देश्यों का निर्धारण स्वयं नहीं कर पाता है, अन्य ही लोग करते है। जब उसे समुदायिक नियन्त्रण एवं अत्याचार से मुक्ति मिल जाती है और वह अपने ध्येय के

अनुसार जीवनयापन करने लगता है, तो वह स्वतन्त्र कहा जा सकता है। अर्थात् समाज में सभी व्यक्तियों के लिए समान नियम, कर्तव्य एवं अधिकार होने चाहिए। प्रत्येक सदस्य को रोजी कमाने, विचारों के आदान–प्रदान, सगठन आदि की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अतः डॉ॰ अम्बेडकर के अनुसार समुदाय में स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि कोई मनुष्य भय एवं भूख से पीड़ित न हो। उस पर किसी का अनावश्यक नियन्त्रण न हो और वह शान्तिपूर्वक न्यायोचित समाज व्यवस्था में रहता हो। ''एक समुदाय की स्वतन्त्रता का दूसरे समुदाय की स्वतन्त्रता में अन्तर है। प्रत्येक बड़े समाज में अनेक सामाजिक इर्काईयाँ या समुदाय होते है। वास्तविक सामाजिक स्वतंत्रता तभी है, जब सब समुदाय एक दूसरे के नियन्त्रण एवं अत्याचार से पीड़ित न हो। वे अपने जीवन को मूल्यों के अनुसार चलाते हो। आपसी सहयोग एवं सामाजिक एकता का भाव ही सब समुदायों के लिए स्वतन्त्रता ला सकता है। यही कारण है कि डॉ॰ अम्बेडकर ने अपने समाज दर्शन में सामान्य हित पर अधिक बल दिया। विचार–विनिमय और संगठन की आवश्यकता पर भी विशेष जोर दिया। सामाजिक स्वतन्त्रता की सफलता के लिए प्रत्येक व्यक्ति में सहनशीलता होना अति आवश्यक है। विभिन्नता में सहनशीलता एवं एकता सामाजिक स्वतन्त्रता का मूल स्त्रोत है। प्रो॰ टॉनी के अनुसार, ''एक समाज केवल उसी समय स्वतन्त्र माना जा सकता है, जब प्रकृति के द्वारा उत्पन्न ज्ञान एवं साधन की सीमाओं में उसकी संस्थाएँ एवं नीतियाँ अपने रहने वाले सभी सदस्यों को उत्थान एवं कर्तव्य के लिए जैसा कि वह मानते थे, करने का अवसर प्रदान करती है और चूँकि स्वतन्त्रता त्यागनी पड़े, जब ये ऐसा महसूस करें, इसलिए उसे अति संयमी नहीं होना चाहिए। प्रो॰ टॉनी और डॉ॰ भीम राव आंबेडकर का मत मिलता–जुलता है। अम्बेडकर ने इसी बात पर बल दिया कि समाज के सब सदस्यों को आगे बढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए। किसी आवश्यक बन्धन को, जिससे उनकी प्रगति में अवरोध पैदा होता है, उन पर नहीं थोपने चाहिए। जहाँ तक राजनैतिक स्वतन्त्रता का प्रश्न है, सामान्यतः इसे लोग वोट देने का अधिकार ही समझते है। डॉ॰ अम्बेडकर वोट देने का अधिकार को पर्याप्त नहीं मानते थे। उनके अनुसार, समाज तथा राज्य में जितने भी नियम बनाये जाते है, उनमें सार्वजनिक मत की प्रधानता होनी चाहिए। वे सभी राजनैतिक मूल्य जो सब लोगों के लिए लाभकर है, वर्ग–विशेष के हाथ में नहीं होने वाहिए। सब व्यक्तियों को अपनी सम्मति देने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। आज की बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता में बाधक सिद्ध हो रही है। इसीलिए जब तक इस साम्प्रदायिकता से दीन–हीनों को मुक्ति नहीं मिल जाती है, तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं है।'' राजनैतिक स्वतन्त्रता का आर्थिक न्याय से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता किस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था से मेल खाती है? कौन सी राजनीति मूल्यों को जनता के लिए सुलभ बना सकती है? यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतन्त्रता का पूँजीवाद एवं समाजवाद से क्या सम्बन्ध है। पूँजीवाद में स्वतन्त्रता, राज्य से दया आदि नहीं चाहती है, वरन् यह तो अधिकारों की माँग करती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि व्यक्ति को राज्य से अधिकतम छुटकारा मिलना चाहिए। राज्य की जितनी भी नियन्त्रण शक्तियाँग करती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि व्यक्ति को राज्य से अधिकतम छुटकारा मिलना चाहिए। राज्य की जितनी भी नियन्त्रण शक्तियाँ है, उनका व्यक्ति पर दबाव न हो, तो तो स्वतन्त्रता का पक्ष भारी रहता है। अतः पूँजीवादी में स्वतन्त्रता का अर्थ है–''राज्य में स्वतन्त्रता, राजनैतिक स्वतंन्त्रता ही सब कुछ नहीं है। पूँजीवाद, राज्य से सभी क्षेत्रों में अधिकतम स्वतन्त्रता चाहता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिक से अधिक स्थान रहना चाहिए। पूँजीवाद के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सर्वोपरि है।'' समाजवाद इस प्रकार की स्वतन्त्रता से सहमत नहीं है। इस मत का कथन है कि पूँजीवाद में वही स्वतन्त्र है, जिसके पास धन है। साधनहीन लोग, गरीब एवं श्रमिक स्वतन्त्र नहीं है वे अपनी जिविका कमाने के लिए अपने मालिको की इच्छानुसार कार्य करते है। बहुत से स्थानों में श्रमिक दासों के समान जीवन व्यतीत करते है। इसलिए समाजवाद के अनुसार, उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व होना चाहिए। पूँजीवाद में नितान्त स्वतन्त्रता का सिद्धान्त अच्छी आर्थिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है, इसके लिए व्यक्तिवाद ही सर्वोपरि है, लेकिन समाजवाद में सामाजिक ध्येय ही सबसे उत्तम है। इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बहुत कम स्थान दिया जाता है। समाज का हित ही सर्वोपरि है। पूँजीवाद एवं समाजवाद को यदि पृथक–पृथक दृष्टि से देखा जाये, तो एक में बहुत कम स्वतन्त्रता है और दूसरे में बहुत अधिक। लेंकिन सामूहिक दृष्टि से दोनों एक दूसरे के पूरक है, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे की कमी को पूरा करते है। मौलिक अधिकारों की व्यवस्था के आधार पर डॉ॰ अम्बेडकर ने इन दोनों मतो के सन्दर्भ में समन्वयवादी नीति अपनायी। उसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति भलीभांति हो सकती है। मौलिक अधिकारों में यह आवश्यक नहीं कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं समाजवादी भावना नष्ट हो जाये। इसमें सभी सदस्यों को सामान्य हित

सम्भव है। डॉ॰ अम्बेडकर का आर्थिक कार्यक्रम इसी बात को लेकर चलता है। वह न तो संकुचित व्यक्तिवादी विचार के समर्थक इसी बात को लेकर चलता है। वह न तो संकुचित व्यक्तिवादी विचार के समर्थक थे और न वह घोर समाजवाद को ही चाहते थे। उनके मौलिक अधिकारों के सिद्धान्तों में दो मुख्य बातें हैं– क. वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं सम्मान पर आधारित है तथा ख. वे सभी व्यक्तियों को समाजवादी विचार की ओर आकर्षित करते है। इस प्रकार वह दोनों अतिशयवादी दृष्टिकोण को अपने दर्शन में स्थान नहीं देते थे। वह उनके उचित समन्वय में विश्वास करते थे। यह बात वर्तमान संविधान में राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों से स्पष्ट हो जाती है। इन सिद्धान्तों के अनुसार, ''राज्य सार्वजनिक कल्याण के लिए एक ऐसे समाज की स्थापना एवं सुरक्षा करेगा, जो लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय को जहाँ तक हो सके यहाँ तक सम्भव बना सके और राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में यह भाववना भर सके।'' राज्य अपनी नीतियों का निर्धारण इस प्रकार करें कि ''समाज में पाये जाने वाले सभी भौतिक साधनों से सामान्य हित हो और आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन के साधन एवं धन कुछ ही लोगों के हाथ में केन्द्रित न हो पाये अर्थात् राज्य को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए ताकि सभी क्षेत्रों में सामान्य हित की भावना बढ़े।'' डॉ॰ भीम राव आंबेडकर ने अपने राज्य–समाजवाद के सिद्धान्त के आधार पर भी व्यक्तिवाद एवं समाजवाद का समन्वय करने का सराहनीय कार्य किया। वह इस व्यवस्था को एक वैधानिक रूप देना चाहते थे। कुछ कारणों से ऐसा न हो सका, किन्तु उनका समाजवाद का सिद्धान्त 'मिश्रित अर्थ–व्यवस्था' का दूसरा नाम है। व्यक्तिवाद एवं समाजवाद का यह मध्यम मार्ग है। यह कार्ल मार्क्स के वैज्ञानिक– समाजवाद की बुराईयों से बच जाता है। वैज्ञानिक समाजवाद में न तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को उचित स्थान है और न आध्यात्मिक मूल्यों को ही मान्यता है। डॉ॰ भीम राव आंबेडकर एडम स्मिथ के सिद्धान्त स्वतन्त्रता के आर्थिक सिद्धान्तों को भी नहीं मानते थे, क्योंकि उसमें सार्वजनिक हित की अवहेलना की जाती है। वह एक परिवर्धित पूँजीवादी अर्थ–व्यवस्था को महत्व अवश्य देते थे, बशर्ते कि वह दीन–हीन लोगों की सुविधाओं के लिए अधिक अवसर प्रदान करें। अतः डॉ॰ अम्बेडकर एक समन्वयवादी विचारधारा के अनुयायी थे, जो भारतीय संस्कृति विशेषकर बौद्ध परम्परा की मूल विशेषता रही है। उनकी स्वतन्त्रता का सिद्धान्त मानव–परिस्थितियों से भली–भांति परिचित है। उनका मत प्रो॰ पोलॉर्ड के मत से मिलता है कि ''दुर्बल व्यक्तियों की स्वतन्त्रता बलवान या अमीर लोगों पर ही कुछ प्रतिबन्ध लगाने से सम्भव हो सकती है। प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता मिलनी ही चाहिए, उससे अधिक कुछ और नहीं, उनको दूसरो के प्रति वही करना चाहिए, जो वे अपने लिए दूसरों से चाहते है। उस आपसी सहयोग एवं प्रेम से स्वतंत्रता, समता एवं नैतिकता सुदृढ़ हो सकती है। स्वतन्त्रता का मूल ध्येय सामाजिक समृद्धि एवं जीवन में अच्छे सम्बन्धों की स्थापना होना चाहिए।

- **समता** – मनुष्यों में कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएं होती है, जिनका अन्त करना असंभव है। उनक इच्छाएं, भावनाएं भिन्न होती है। अतः किसी भी क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता कीकल्पना करना व्यर्थ है। डॉ॰ भीम राव आंबेडकर इस बात को पूर्ण रूप से स्वीकार करते थे। लेकिन जहाँ तक मनुष्य की सामान्य विशेषताओं का प्रश्न है, वहाँ पर समता का सिद्धान्त किया जाना चाहिए। सब व्यक्तियों को सैद्धान्तिक दृष्टि से समान समझना प्रजातन्त्र का मौलिक आधार है। जाति, धर्म, लिंग, धर्म एवं राष्ट्रीयता से परे सब व्यक्तियों में एक सामान्य विशेषता है औ वह यह है कि ''सब लोगो में बुद्धि है।'' इस दृष्टि से सभी लोग मानव अथवा बौद्धिक समाज के सदस्य है। वे उन विशेष समुदाय के ही सदस्य नहीं, जिनमें वह पैदा हुए। समता का सिद्धान्त मनुष्य की सामान्य विशेषताओं से निकलता है। न कि बातों से, जो उन्हें विभाजित करती है। मूल प्रश्न यह है कि समता को व्यावहारिक रूप कैसे प्रदान किया जायें? समता केवल विचार–मात्र ही नहीं है, जिसे विचारों में ही अनुभव किया जा सके। इसके लिए व्यावहारिक मापदण्ड की आवश्यकता है। मनुष्य सामाजिक एवं बौद्धिक प्राणी है। उसे अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं को इस प्रकार बनाना चाहिए कि वे उन सम्बन्धों को बढ़ाए, जो समता को दृढ़ करें और उन अनावश्यक भिन्नताओं को कम करें, जो समता के भाव को दुर्बल बनाती है। यह सब कुछ मानव संगठन की दूरदर्शिता पर निर्भर है कि सब लोग मिलकर कहाँ तक समता का राज्य बनाने में सफल होते है।'' सब व्यक्तियों में मूल्यांकन करने योग्य कुछ बाते होती है, जिन्हें उनके साथी आसानी से नाप सकते है। प्रत्येक मनुष्य, जिस समाज में रहता है, उसके लिए योगदान करता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने समाज के नियम एवं कानून बनाने में कुछ आंशिक अधिकार होने चाहिए। सब लोगों के हित के कानून का निर्माण एवं उनकी रक्षा होनी चाहिए। आज सब लोग यह जानते है कि अधिकारों का जीवन में अधिक महत्व है। यदि वे कुछ वर्गों को न दिये जाये अथवा उनका हनन हो, तो अनके उपद्रव होने की

सम्भावना बनी रहती है। यदि सामान्य हित की रक्षा करनी है और समता का सिद्धान्त दृढ़ बनाना है, तो ऐसे सम्बन्ध, जो जाति–पाँति, छुआछूत एवं वर्ण पर आधारित है, समाप्त होने चाहिए। समता के सिद्धान्त में उनका कोई महत्व नहीं है। अतः समता का प्रथत तत्व यह माँग करता है कि ''कर्तव्य एवं अधिकारों में संतुलन' होना चाहिए। बिना उनके सन्तुलन के न्यायोचित समाज की स्थापना करना असंभव है। उपरोक्त विवचेन से वैधानिक अधिकारों की ओर ध्यान जाता है। अधिकार– विभाजन में अनावश्यक भिन्नता, वैमनस्य एवं घृणा का कारण है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जहाँ न्याय एवं अत्याचारी ही का बोल–बाला रहता है, वहाँ पर सामाजिक उपद्रव होते रहते है। अधिकारों की भिन्नता क्रान्ति का कारण है। अमेरिका एवं अफ्रीका में काले लोगों के अधिकारों का हनन वहाँ की अशान्ति का मुख्य कारण है। बिना अधिकारों के लोग एकत्रित होकर हिंसात्मक विधियों का भी प्रयोग कर सकते है। ऐसा होता भी है। अतः डॉ॰ भीम राव आंबेडकर इस बात पर बल देते थे कि शान्ति एवं न्याय–व्यवस्था बनाये रखने के लिए समान अधिकारों का होना आवश्यक है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि सब लोग कानून की दृष्टि से समान है। डॉ॰ भीम राव आंबेडकर ने भारतीय संविधान में अधिकारी की समता एवं कानून की व्यवस्था को भलीभांति प्रतिपादित किया है। कानून की समता समान राजनैतिक अधिकारों पर भी बल देती है। इसका अर्थ है–'राजनैतिक समता'। राजनैतिक समता केवल व्यस्क मताधिकार ही नहीं है। यह तो इसका एक अंग है। राजनैतिक अधिकारों का महत्व उसी समय है, जब व्यक्ति शिक्षित हो। वे अपने अधिकारों को अच्छी तरह समझते हो, अन्यथा चालाक लोग अशिक्षित एवं साधन हीन मनुष्यों को ठगते है। उनकी इच्छानुसार कार्य न करने पर अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती है। इसलिए जब तक जन–शिक्षा, पूर्ण व्यवस्था, समान अधिकार, अवकाश आदि न हो, तब तक राजनैतिक अधिकारों को कोई महत्व नहीं है। कानून की दृष्टि से समता के अधिकार में यह भी सन्निहित है कि ''सबके साथ आर्थिक न्याय'' भी हो। इसका अर्थ है–'आर्थिक समता'। आर्थिक समता यह नहीं कहती है कि समस्त धन बराबर बाँट दिया जाये। ऐसा सोचना बिल्कुल ही निरर्थक है। डॉ॰ अम्बेडकर ने केवल अवसर की समता पर बल दिया, जिसका अर्थ है– 'प्रत्येक से उसकी योग्यता एवं गुण के अनुसार काम लिया जाना चाहिए व प्रत्येक को उसके कार्यानुसार फल भी दिया जाना चाहिए।' जो व्यक्ति जिसके योग्य है, उनको ही यह कार्य मिलना चाहिए और उत्पादित धन को योग्यतानुसार समान वितरण किया जाना चाहिए। श्रमिक वर्ग को उचित वेतन एवं बोनस मिलना भी न्यायोचित है। काम के घण्टे भी कम से कम होने चाहिए ताकि श्रमिक लोग अपना कुछ समय सांस्कृतिक क्रियाओं में भी दे सके ऐसी अवस्था में ही अवसर ही समता का सिद्धान्त सार्थक एवं साकार हो सकता है। यह स्वीकार करना उचित है कि राज्य–उद्योग के क्षेत्र में श्रम–कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। उन्हें और भी आर्थिक सुविधाएं दी जाती है। लेकिन पूँजीवाद वर्ग श्रमिकों का कुछ ध्यान नहीं रखते है, क्योंकि ऐसा करने से पूँजीपति अपनी आय का अतिरिक्त हिस्सा खो बैठते है। कभी–कभी ये अपने उद्योगों को बन्द कर देते है, लेकिन श्रमिकों का वेतन बढ़ाना स्वीकार नहीं करते है। वे श्रमिकों से काम अधिक लेते है और वेतन कम देते है। परिणाम यह होता है कि श्रमिक वर्ग गरीब होता चला जाता है। इसलिए डॉ॰ अम्बेडकर के अनुसार, पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था अवसर की समता के सिद्धान्त का गला घोट देती है। श्रमिक वर्ग को लाभ पहुँचाने के लिए राज्य द्वारा आर्थिक नियोजन होनो आवश्यक है। साथ ही साथ राज्य कर्मचारियों को भी परिश्रमि होना चाहिए, ताकि राज्य के उद्योग में हानि न हो। अतः डॉ॰ अम्बेडकर का राज्य–समाजवाद अवसर की समता के लिए एक उत्तम उपाय है। सामान्य शुभ उनके सिद्धान्त का मूलाधार है। उनके आर्थिक विचार केवल वैचारिक ही नहीं है, बल्कि व्यावहारिक भी है। डॉ॰ अम्बेडकर का राज्य–समाजवाद ठीक ही प्रतीत होता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों के मालिकों पर कुछ आवश्यक प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव है, उनका समाज उन सभी लोगों के लिए हितकर है, जो शोषित है, दीन–हीन एवं दुर्बल है। उन लोगों के लिए भी सुविधाएँ है, जो अशिक्षित एवं रोगग्रस्त है। राज्य– समाजवाद सब तरह से मिश्रित अर्थ–व्यवस्था का ही स्वरूप है। राज्य–समाजवाद में ही वे आर्थिक न्याय को दृष्टिगोचर करते है। इस प्रकार डॉ॰ अम्बेडकर का समता का सिद्धान्त–कम वेतन, अधिक देर तक कार्य के घण्टे, दूषित वातावरण, शक्तिक्षीणता, बीमारी, अशिक्षा, दुर्व्यवहार जो मजदूर वर्ग के साथ किया जाता है, आदि को सहन नहीं करता। ये सब बुराईयाँ न्यायोचित धन–वितरण, कुशल श्रम की दशाओं में सुधार, उत्पादनों के कुछ साधनों का समाजीकरण करने से, सामाजिक सहयोग बढ़ाने में और सामूहिक प्रयत्नों से समाप्त की जा सकती है। इसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित दोनों है। वही सामाजिक व्यवस्था न्यायोचित है, जहाँ सब लोगों को बिना भेदभाव के योग्यतानुसार सुविधाएँ मिलती है और मानवता का आदर होता है।

- **भ्रातृत्व** – भ्रातृत्व का अर्थ ''सभी मनुष्यों में प्रेम एवं भाई–चारे की भावना से है, जिसके आधार पर सब लोग मिलकर शान्तिपूर्वक रहते है। विभिन्न सामाजिक इकाईयों एवं विभिन्न देशों में एकता की भावना भातृत्व का ही प्रदर्शन है। यह भावना तभी ठीक तरह अनुभव की जा सकती है, जब सभी सामाजिक परिवर्तन एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से जा सके। विचार–विनिमय से विभिन्न प्रकार की बातों का ज्ञान होता है। इससे लोगों में निकटता के भाव का संचार होता है। कुछ लोगों को ज्ञान एवं शिक्षा से वंचित रखना भ्रातृत्व की भावना का गला घोटना है। सामाजिक गतिशीलता के सिद्धान्त का भ्रातृत्व से घनिष्ट सम्बन्ध है। डॉ॰ अम्बेडकर के अनुसार गतिशीलता से तात्पर्य यह है कि सब वर्ग आपस में प्रेम–भाव से रहे और समयानुसार इधर–उधर घूमकर अच्छे सम्बन्ध स्थापित करें। उनमें ऊँच–नीच का कोई भाव न हो। व्यक्ति को एक ही स्थान पर उसके जन्म के कारण से निश्चित नहीं कर देना चाहिए। वह एक ऐसी–व्यवस्था में विश्वास करते थे, जिसमें एक व्यक्ति का स्तर उसकी योग्यता के आधार पर स्वतन्त्रतापूर्वक परिवर्तित होता रहे। भ्रातृत्व का सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि लोगों में एक ऐसा सामाजिक प्रवाह रहें कि विचार एवं घटनाओं का विनियम होता रहे।'' डॉ॰ अम्बेडकर ने सदैव नवीन बातों को उत्साहित किया। उनके अनुसार सामाजिक गतिशीलता रखने के लिए विचार एवं संस्थाओं में मनुष्यों की आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहना चाहिए। एक अन्य दृष्टिकोण से भ्रातृत्व का अर्थ सामाजिक एवं आध्यात्मिक समरूपता तथा भावनात्मक एकता से है। केवल धर्म– निरपेक्षता, सामान्य शुभ, मानववादी दृष्टिकोण, समाजवादी उत्साह, प्रेम और सहयोग की भावनाओं से ही इस सिद्धान्त की जड़े सुदृढ़ हो सकती है। धर्म एवं उच्चतम मूल्यों के द्वारा समाज में आध्यात्मिक एकता होनी चाहिए। कुछ लोग भ्रातृत्व से राष्ट्रवाद की भावना जोड़ देते है। यह भावना भी डॉ॰ भीम राव आंबेडकर के दर्शन में कूट– कूट करा भरी है। वह सच्चे राष्ट्रवादी थे। देश–भक्ति की भावना उनके विचारों में भरी पड़ी है। उनका भ्रातृत्व का सिद्धान्त व्यक्तिवाद एवं समाजवाद, राष्ट्रवाद एवं मानववाद और भौतिकवाद एवं आध्यात्मिकता के समन्वय का एक रूप है। यही कारण है कि वह वर्ग–विशेष के समर्थक नहीं रहे और देश की सीमाओं से आगे बढ़कर मानवता की भलाई के लिए उन्होंने बुद्ध का सन्देश दिया।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण –

कृष्ण दत्त पालीवाल, डॉ॰ राजेन्द्र मोहन भटनागर, एल0 आर0 बाली, विजय कुमार पुजारी, बसन्त मून, डॉ॰ राजेश कुमार, डॉ॰ डी0 आर0 जाटव, डॉ॰ डी0 आर0 जाटव, भ्रदशील रावत, जितेन्द्र कुमार गौरव, सोहनलाल शास्त्री एवं मोहन सिंह

समस्या कथन

''डॉ. आंबेडकर का सामाजिक मानववाद एवं बौद्ध धर्म''

निष्कर्ष

डॉ॰ अम्बेडकर के मानववाद के उपर्युक्त आधार स्वतन्त्रता, समता एवं भ्रातृत्व के विश्लेषण से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते है –

- स्वतंत्रता एक सामाजिक आदर्श के रूप में व्यक्ति की स्वेच्छा पर आधारित होनी चाहिए, जो आध्यात्मिक संयम की ओर भी ले जा सके। यह मन एवं बुद्धि को स्व– संयम एवं स्व–संस्कृति को शु;द्ध एवं प्रखर बनाने का एक उपर्युक्त साधन है। इसमें सभी भाईयों से मिलने को पूर्ण स्वतंत्रता है। मानव एक बौद्धिक प्राणी है, उसे स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है।
- समता भी एक सामाजिक आदर्श के रूप में आत्मोन्नति एवं सामाजिक विकास का प्रमुख साधन है। सब मनुष्यों के बीच अधिकतम समता होनी चाहिए। सामाजिक धन का वितरण भी उचित हो। प्रत्येक मनुष्य को योग्यतानुसार कार्य एवं वेतन मिले, यही समता की माँग है।
- भ्रातृत्व एक सामाजिक आदर्श के रूप में स्वतंत्रता एवं समता के बिल्कुल निकट है। यह एक ऐसी भावना है, जिससे सब प्रकार की एकता का आहवान होता है। विचार–विनिमय द्वारा सब में एकत्व की भावना का जागरण ही भ्रातृत्व है। स्वतन्त्रता, समता एवं भ्रातृत्व कोई पृथक–पृथक मूल्य नहीं है। तीनों जीवन के संगठित मूल्य है। उनकी समग्रता से ही जन–कल्याण संभव है।

इस प्रकार ये मानववादी सिद्धान्त किसी उचित समाज–व्यवस्था के स्तम्भ है। जिन्हें भारतीय–समाज के मूलाधान माना जाता है। डॉ॰ अम्बेडकर का मानववाद समयानुकूल एवं प्रासंगिक है जो –

- सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय पर बल देता है।
- विचार, विश्वास एवं पूजा की स्वतंत्रता पर बल देता है।
- अवसर पर स्तर की समता पर बल देता है।
- व्यक्तिगत सम्मान एवं राष्ट्रीय एकता के रूप में भ्रातृत्व की भावना पर बल देता है।
- आज ये राजनीतिक सिद्धान्त ही समझे जाते है, किन्तु आगामी युग में ये सबके लिए सामाजिक आदर्श बन जायेंगे, क्योंकि इनको सामाजिक आदर्श बनाये बिना भारतीय समाज का ही नहीं अपितु विश्व समाज का कल्याण संभव नहीं हो सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ओड प्रो0 एल0के0 (1982): शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर।
- सक्सैना, एन.आर.स्वरूप (1985): शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त आर0 लाल, बुक डिपो, मेरठ।
- झा. सीताराम (1974), भारतीय समाज का स्वरूप, पटना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- दीक्षित, ताराचन्द्र (1976), डॉ॰ लोहिया का समाजवादी दर्शन, इलाहाबाद लोक भारतीय प्रकाशन।
- बेसन्तरी देवेन्द्र कुमार (2001), भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी, नई दिल्ली, दलित साहित्य प्रकाशन।
- मनुस्मृति (1975), बम्बई, भारतीय विद्या भवन।
- विद्यालंकार, निरूपण (डॉ॰), भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, मेरठ साहित्य भण्डार।